**प्रश्न 2. हिंदी की उत्पत्ति और हिंदी भाषा के विकास पर संक्षेप में विचार कीजिए।**

**उत्तर**—मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल 10वीं सदी के आस-पास समाप्त हो जाता है और वहीं से आर्य भाषाओं के विकास का काल आरंभ होता है। इसीलिए हिंदी सहित सभी समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति का काल दसवीं सदी ही माना जाता है। यद्यपि इन भाषाओं के विकास के सूत्र आठवीं-नवीं शताब्दी के आस-पास से ही मिलने शुरू हो जाते हैं। पर 10वीं शताब्दी से पूर्व की स्थिति भाषा का संक्रमण काल ही है। इसमें भध्यकालीन भाषा—अपभ्रंश के ह्रास और आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के चिह्न देखे जा सकते हैं। अतः संक्रमण काल के बाद हिंदी का विकास दसवीं शताब्दी से स्वीकार किया जाना चाहिए।

हिंदी भाषा के विकास की तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं। (1) आदिकाल (2) मध्य काल (3) आधुनिक काल।

**आदिकाल** (1000-1500)—यह समय राजनैतिक उथल-पुथल का युग था। इसमें भाषा का उपयुक्त विकास नहीं मिलता। इस काल में भाषा के तीन रूप मिलते हैं। (*i*) अपभ्रंशाभास (*ii*) पिंगल (*iii*) डिंगल। जिसमें सिद्धों, नाथों और जैनियों का धार्मिक साहित्य उपलब्ध होता है, अपभ्रंशाभास है।

**पिंगल**—स्थानीय भाषा एवं मध्य देश या ब्रज की भाषा के मिश्रित रूप का नाम पिंगल है। पिंगल उस समय के साहित्य में प्रयुक्त होने वाला मुख्य भाषा-रूप है। डिंगल वह भाषा रूप है, जो अपभ्रंश और राजस्थानी के मिश्रण से बना है। चारणों की वीरगाथात्मक रचनाओं की भाषा डिंगल ही है जिसमें रासो ग्रंथ प्रमुख है। इन भाषा रूपों के अतिरिक्त दो भाषा रूप और दृष्टिगोचर होते हैं। पहला पुरानी हिंदी रूप और दूसरा पुरानी मैथिली का रूप। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रधान्य है और दूसरा रूप विद्यापति की रचनाओं में मिलता है। हिंदी की प्रारंभिक अवस्था के कारण इस काल में विभिन्न बोलियों, उपबोलियों और उपभाषाओं का अंतर स्पष्ट नहीं होता, बल्कि प्रत्येक भाषा रूप में अन्य रूपों का मिश्रण दिखाई देता है।

**डिंगल**—इस काल की हिंदी भाषा में अपभ्रंश की सभी ध्वनियां आ गई थीं। 'ऐ, औ' जैसी संयुक्त ध्वनियां भी अपना अलग रूप धारण कर चुकी थीं। अपभ्रंश में तद्भव शब्दों का प्राधान्य था। यह प्रवृत्ति आदिकालीन हिंदी में भी मिलती है। मुसलमानों के साथ बढ़ते संपर्क के कारण इस काल की भाषा में फारसी, अरबी, तुर्की आदि मुस्लिम भाषाओं के अनेक शब्द आ गए। इस काल की रचनाओं में उस भाषा का स्वरूप है तो सही पर उसमें मिश्रण भी है। इस काल में भाषा का शुद्ध रूप खोजा जाना कठिन है।

...मध्य काल मुगलों के शासन का युग है। भक्ति शाखा गतिशील था, इसलिए इस समय देशी भाषाओं का विकास हुआ। इसमें काव्य लिखा गया। काव्यग्रंथों की टीकाएं लिखी गईं। लेकिन यत्र-तत्र गद्य की भी कुछ झलक मिलती है। इस काल में भाषा के दो मुख्य रूप विकसित हुए—ब्रज एवं अवधी। शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रज का रूप विकसित हुआ। हिंदी क्षेत्र के पश्चिमी हिस्से में भाषा का यही रूप व्यवहृत है। अर्द्धमागधी अपभ्रंश से अवधी का रूप विकसित हुआ। यह पूर्वी हिस्से में प्रचलित है। अवधी के विकास में तुलसीदास, कुतुबन, मंझन और जायसी ने विशेष योग दिया। ब्रज के विकास में सूरदास और नंददास आदि का योग सराहनीय है। अवधी का प्रसार मध्यकाल के मध्य तक ही रहा। लेकिन ब्रज का प्रसार न केवल मध्यकाल के मध्य तक रहा अपितु समस्त हिंदी क्षेत्र तक फैला। ब्रज में कविता आधुनिक काल में भी हुई। जगन्नाथदास रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न में ब्रज का प्रभाव देखा जा सकता है। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तक ने प्रारंभ में ब्रज में ही कविता की।

ब्रज और अवधी के अतिरिक्त हिंदी का खड़ी बोली पर आधारित दक्खिनी रूप भी दिखाई दिया। दक्खिनी का विकास 12वीं शताब्दी के आस-पास उत्तर भारत में उर्दू के रूप में परिलक्षित हुआ।

इस काल के शासकों की दरबारी भाषा फारसी थी। फारसी का प्रचार-प्रसार इस युग में प्रमुख हुआ। इसीलिए इस भाषा में अरबी, फारसी व तुर्की शब्दों ने प्रधानता ग्रहण की। इसीलिए उर्दू की ध्वनियों—क़, ख़, ग़, ज़, फ़ आदि ध्वनियाँ हिंदी में समाहित हुईं। धार्मिक साहित्य की प्रधानता के कारण इस काल की भाषा में संस्कृत एवं तत्सम शब्दों का भी प्रचलन हुआ। अंग्रेजों, फ्रांससियों के संपर्क में आने के कारण इनकी भाषओं के अनेक शब्द हिंदी में स्थान पा गए।

**आधुनिक काल**—अठारवीं शती में उत्तरार्द्ध के आखिर में और 19वीं शती के प्रारंभ में हिंदी भाषा का आधुनिक रूप दिखने लगता है। अंग्रेजों ने इस समय अपने धर्म प्रचार व शासन के लिए जनसाधारण में भाषा के प्रचार के लिए फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। लेकिन 1800 से 1950 तक का समय भाषा की दृष्टि से संक्रांति काल था। इस दौरान हिंदी का स्वरूप पूर्णतः दिखाई नहीं देता। यह तो केवल से संपूर्ण निर्धारण का प्रयास भर दिखाई देता है। 1850 के आस-पास तक हिंदी का स्वरूप और उस भाषा की दिशा निश्चित हुई। इसी दिशा में बाद में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके अन्य सहयोगी लेखक, महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके बाद के रचनाकारों ने गद्य-पद्य की भाषा का नया रूप अपनाया। यह खड़ी बोली पर आधारित रूप था और इसे ही राष्ट्र भाषा के रूप में अपनाया गया।

हिंदी के स्वरूप के अतिरिक्त इस युग में अनेक सहभाषाओं, उपबोलियों और बोलियों का विकास हुआ। इस काल में भाषा में तत्सम शब्दों का प्रधान्य हुआ। ज्ञान-विज्ञान के अनेक भाषाओं के शब्द समाहित हुए। इनका मूल-आधार संस्कृत शब्दावली निश्चित हुआ। अन्य भारतीय भाषाओं, आर्यभाषाओं और आर्येतर भाषाओं की शब्दावली भी हिंदी में ग्रहण की गई। समर्थ साहित्यकारों ने अनेक शब्द भी निर्मित किए। अंग्रेजी भाषा प्रभाव के कारण 'ऑ' जैसी नई ध्वनि (कॉलेज) विकसित व समाविष्ट हुई। भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य

# हिंदी भाषा के विभिन्न रूप

**प्रश्न 5. हिंदी भाषा के विभिन्न रूपों पर सारगर्भित निबंध लिखिए।**

उत्तर–अपभ्रंश के बाद हिंदी के अनेक रूप विकसित होते गए हैं–ब्रज और अवधी के बाद खड़ी बोली का विकास हुआ। हिंदी के विभिन्न रूपों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

**परिनिष्ठित हिंदी**–परिनिष्ठित हिंदी को राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित किया गया है। यह साहित्य, शिक्षा और प्रशासन की भाषा है। इसकी संरचना का मुख्य आधार पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली है। किंतु फारसी एवं अंग्रेजी के प्रभाव के कारण इसकी ध्वन्यात्मक और व्याकरणात्मक संरचनाओं में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। इसके शब्द भंडार का मूल स्रोत संस्कृत शब्दावली है। संस्कृत शब्दों के आधार पर अनेक नए शब्दों की रचना हुई है। इसमें यूरोप की अन्य भाषाओं के शब्दों की संख्या भी पर्याप्त है। इस भाषा को बोलने वालों की बड़ी संख्या है। विचार अभिव्यक्ति के कारण यह सभी भाषाओं में श्रेष्ठ है।

**उर्दू**--उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है पड़ाव। शिविर, फौजी पड़ाव या खेमा आदि। शाही पडाव को उर्दू ए मुअल्ला कहा जाता है। पड़ावों में प्रयुक्त होने के कारण यह ज़बान-ए-उर्दू कहलाई।

उर्दू की उत्पत्ति ब्रज, पंजाबी और सिंधी से बताई जाती है। लेकिन इसका आधार दिल्ली और इसके आसपास का क्षेत्र है। दिल्ली राजधानी होने के कारण मुसलमान शासकों ने दिल्ली के आसपास की बोली को अपनाया और उसमें उर्दू, फारसी के शब्दों का प्रयोग कर-कर-चलाऊ भाषा को जन्म दिया। उर्दू की उत्पत्ति 13वीं शती के आरंभ से मानी जानी चाहिए। इस्लामी शासन के साथ यही भाषा मुस्लिम शासकों के साथ दक्खिन पहुंची और दक्खिनी कहलाई। यहाँ इसमें साहित्य रचना हुई। दक्खिनी के वली के दिल्ली आने पर यह भाषा फिर उत्तर भारत में आ गई और मुस्लिम शासकों का आश्रय पाकर काफी फली-फूली।

संरचना की दृष्टि में हिंदी से उर्दू भिन्न नहीं है। यह तो परिनिष्ठित हिंदी की शैली है। यह अरबी पर आधारित लिपि में लिखी जाती है।

**हिंदी, हिंदवी, दक्खिनी, रेख्ता, रेख्ती**—उर्दू कहलाने से पूर्व उर्दू के भाषा अनेक रूप थे। इसका सबसे पुराना नाम हिंदवी, हिंदुवी था। ईशा अल्लाह खां ने जब 'रानी केतकी कहानी लिखी' तो उसमें लिखा था—उसमें हिंदवी पुट या अन्य किसी भाषा का पुट नहीं है, तो उनका अभिपाय हिंदवी से था। यह नाम तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी तक रहा। मुसलमान शासकों के दक्षिण में प्रवेश के बाद हिंदवी कही जाने वाली भाषा दक्षिण में प्रविष्ट हुई। दक्षिण में इसे मुसलमान कवियों का आश्रय मिला। परिणामस्वरूप दक्षिण की यह साहित्यिक भाषा दक्खिनी कहलाई।

दक्खिनी और उर्दू के बीच की भाषा रेख्ता है। दक्खिनी का विकसित रूप जिसका प्रचार प्रसार दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक हुआ, रेख्ता कहलाया। 18वीं सदी में दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि 'वली' ने रेख्ता नाम की एक नवीन काव्य शैली को जन्म दिया। इस शैली के आधार पर वह भाषा रूप रेख्ता कहलाया। फरीद की कविता को रेख्ता नाम से जाना जाता है। रेख्ता पुरुषों की भाषा थी। रेख्ती उसी भाषा का रूप है, जो स्त्रियों में प्रयुक्त होती थी। रेख्ती में अरबी, फारसी के सरल शब्द आते थे। 18वीं सदी की रेख्ता ही 19वीं शती तक पहुंचते-पहुंचते उर्दू कहलाई।

**हिंदुस्तानी**—हिंदुस्तानी हिंदी-उर्दू के बीच की भाषा है। इसमें संस्कृत और फारसी के सरल शब्दों का प्रयोग है। यह भी दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों में ही जन्मी, फली और फूली है। हिंदुस्तानी को काफी दिनों तक उर्दू का दूसरा नाम माना जाता रहा। इसे हिंदू और मुसलमान दोनों ही बोलते थे। अंग्रेजों की कूटनीति के कारण उर्दू मुसलमानों की और हिंदी हिंदुओं की भाषा कही जाने लगी। बाद में दोनों संप्रदायों में तनाव के हालात भी बने। पर महात्मा गांधी ने दोनों में मेल-मिलाप को बढ़ावा देने के लिए ऐसी भाषा का प्रस्ताव रखा जिसमें न संस्कृत के कठिन शब्द थे और न उर्दू के मुश्किल। वस्तुतः हिंदुस्तानी हिंदी की वह शैली है जिसमें बोलचाल के, सबकी समझ में आने वाले शब्दों की अधिकता है और संस्कृत या फारसी के शब्दों के प्रति आग्रह नहीं है।

**दक्खिनी**—दक्खिनी शब्द दक्खिन में ई प्रत्यय लगकर बना है। साधारण शब्दों में इसका अर्थ है—दक्षिण में प्रचलित भाषा। वस्तुतः यह चौदहवीं-पंद्रहवी शताब्दी की खड़ी बोली पर आधारित है। मुस्लिम साम्राज्य के विस्तार के साथ यह अहमदाबाद, बीजापुर, गोलकुंडा पहुंची। वहाँ पहुंचकर दक्षिण की भाषाओं के प्रभाव के कारण दक्खिनी हिंदवी कहलाने लगी। दक्खिनी को दक्षिणी को राज्याश्रय लिया। व्याकरण और शब्द भंडार के कारण दक्खिनी हिंदवी और उत्तर भारत की हिंदवी में कोई विशेष अंतर नहीं। पर मुसलमानों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण उसके लिए फारसी लिपि का प्रयोग होने लगा। खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचना मिराजुल-आशकीन दक्खिनी हिंदवी में ही उपलब्ध है। दक्खिनी के साहित्यकारों में सैयद गेसूदराज, बंदा नवाज, सैयद मुहम्मद हुसेनी अबदुल्लाह, बेलूरी, गवासी, गुलाम अली, निजामी, शेख अशरफ, मुल्लावजदी की रचनाएँ विशेष लोकप्रिय हुई। दक्खिनी हिंदी के अंतिम कवि वली थे। ये उर्दू के बड़े शायर माने जाते हैं। सत्रहवीं शताब्दी में वली औरंगाबादी की दिल्ली

यात्रा के बाद दक्खिनी में नया मोड़ आया। तब से इसमें अरबी-फारसी का प्रभाव बढ़ा। हैदराबाद में निजामी सल्तनत में यह राजभाषा बनी। राजकीय संरक्षण के बाद इसका काफी प्रचार बढ़ा।

दक्खिनी यों तो दक्खिन की बोली है, पर यह दक्षिण के बाहर भी बोली गई। इसके अन्य नाम दकनी, दखनी, देहलवी, गूजरी, दक्खिनी हिंदी, दक्खिनी उर्दू, मुसलमानी, दक्खिन हिंदुस्तानी है।

## खड़ी बोली

खड़ी बोली भाषा है। इसमें 'खड़े' शब्द के विद्वानों ने अनेक अर्थ बताए हैं। (क) खड़ी बोली अच्छे नागरिकों की बोली है। (ख) खड़ी बोली में एक प्रकार का अखड़पन है। पानी इसमें ब्रज भाषा जैसा माधुर्य नहीं है। (ग) इससे अभिप्राय शुद्ध भाषा से है।

खड़ी बोली के प्रारंभ के बारे में विद्वानों में भ्रम है। इसका प्रादुर्भाव अंग्रेजों के आगमन से माना जाता है। पर यह तो अंग्रेजों से पूर्व की भाषा है और अवधी और ब्रज के समकालीन ही है। इसका उद्भव उस अपभ्रंश से हुआ है, जो हरियाणा से बुलंदशहर, मेरठ और बुलंदशहर में बोली जाती है।

हेमचंद्र ने शब्दानुशासन में एक उदाहरण दिया है—'भल्ला हुआ जो मारिया, बहिणि म्हारो कंत' अमीर खुसरो का महत्त्व खड़ी बोली के ही कारण है। पहेली और मुकरियों में तत्कालीन खड़ी बोली का विकसित रूप मिलता है—लाखों का सर काट दिया, ना मारा ना खून'। कबीर की कविता में भी खड़ी बोली के दर्शन होते हैं।

हिंदी और उर्दू में भिन्नता का आभास खड़ी बोली के विकसित होने के बाद दिखने लगा था। गंगभट्ट की 'चद छंद वर्णन की महिमा' में खड़ी बोली का परिमार्जित रूप भले ही न हो पर वह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अवश्य है। रामप्रसाद निरंजनी के योग वशिष्ठ में उर्दू-फारसी के प्रभाव से मुक्त खड़ी बोली का गद्य रूप मिलता है। 1824 में दौलतराम ने रविषेणाचार्य द्वारा रचित जैन पद्मपुराण का अनुवाद किया। यहाँ भाषा में पंडित्य रूप मिलता है। लेकिन इसमें क्रियापद और विराम चिह्न का शुद्ध प्रयोग नहीं मिलता। जटमल की 'गोरा बादल कथा' और अज्ञात लेखक की रचना 'मंडोवर का वर्णन' में भी खड़ी बोली गद्य का विकसित रूप मिलता है। इनमें उर्दू और फारसी के शब्दों का काफी मात्रा में प्रयोग है। 'चकत्ता की पातशाही' राजस्थानी गद्य में लिखी गई रचना है। इसमें गद्य के दो रूप हैं—एक भाखा का रूप और दूसरा दरबारी रूप।

1357 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज के अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट थे। उन्होंने हिंदी और उर्दू में पुस्तकें लिखवाईं। इसके लिए अध्यापकों की नियुक्ति की गई। लल्लू लाल और सदल मिश्र ने हिंदी में पुस्तकें लिखीं और इंशा अल्लाह खाँ ने सुख सागर लिखा। वस्तुतः अंग्रेजों द्वारा कराया गया। यह कार्य अंग्रेजी सभ्यता के प्रचार प्रसार के लिए था।

मुंशी सदासुखलाल नियाज की भाषा व्यवस्थित एवं संस्कृत मिश्रित थी; जबकि 'रानी केतकी की कहानी' में हिंदवी की छूट' और किसी भाषा का पुट नहीं है। प्रेमसागर के रचयिता

लल्लूलाल की भाषा में ब्रजभाषा का प्रभाव है। पं. सदल मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान लिखा। इसकी भाषा व्यवस्थित और साफ सुथरी है। 19वीं शताब्दी में राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद और लक्ष्मणसिंह ने भागीरथ प्रयत्न किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर पंजाब में उर्दू के गढ़ को तोड़ा। बाबू नवीनचंद्र राय व राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म धर्म के प्रचार के लिए अनेक धर्मग्रंथ खड़ी बोली में लिखे। पंजाब के श्रद्धाराम फुल्लौरी ने कई पुस्तकें लिखकर हिंदी का प्रचार-प्रसार किया और एक उपन्यास 'भाग्यवती' भी लिखा। इनका गद्य सुलझा हुआ और प्रौढ़ था। बीसवीं शताब्दी में प्रारंभ में भारतेंदु हरिश्चंद्र सहित अनेक कवि-लेखकों ने इस भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। यही खड़ी बोली आज की हिंदी भाषा का प्रतिनिधित्व करती है।

## ब्रज भाषा

ब्रज भाषा पर बड़ा कार्य डॉ अंबा प्रसाद सुमन ने किया है। उन्होंने ब्रज भाषा को भाषा का दर्जा दिया है। अपने शोध निबंध में वे लिखते हैं—'मथुरा, अलीगढ़, आगरा और धौलपुर में बोली जाने वाली जनपदीय भाषा विशुद्ध रूप से ब्रज भाषा कहलाती है। भक्तिकाल और रीतिकाल में तो इस भाषा की धाक थी, इसीलिए इसे ब्रज बोली न कहकर ब्रज भाषा कहा गया। इसी ब्रज भाषा की उत्तरी सीमा में खड़ी बोली, दक्षिण में राजस्थानी, पूरब से बुंदेली और पश्चिमी से बांगरू स्पर्श करती है। बुलंदशहर, बदायूं, नैनीताल तक ब्रज भाषा पर खड़ी बोली का असर देखा जा सकता है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा तो ब्रज भाषा बोलने वालों की संख्या एक करोड़ 23 लाख मानते हैं।